



धृपद – शाश्वत गायन शैली

अर्चना माधव अंबोरे

सहयोगी प्राध्यापक, श्रीमती राधादेवी गोयनका महिलामहाविद्यालय,
अकोला 444001(महाराष्ट्र)
ई-मेल –ameya.ambhore@gmail.com

प्रस्तावना :-

धृपद – हमारी सबसे पहली सुव्यवस्थित प्रणाली है। धृपद का उगम, विकास तथा गायन शैली का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत शोधपत्र में किया गया है। धृपद शैली के अविष्कारक राजा मानसिंह तोमर (ई.स. 1486-1526) हैं। धृपद गायन शैली के संबंध में संगीत के जिज्ञासुओं में आकर्षण है। इस शैली का गठन अत्यंत विचारपूर्वक और कला-सौंदर्य के आधार पर बना हुआ है। धृपद की सबसे बड़ी यही विशेषता है कि उसमें अनिबद्ध अर्थात् मुक्त और निबद्ध अर्थात् बंधी हुई गायन प्रणाली का सर्वोत्तम रीति से समन्वय है। धृपद में हृदय के तलस्पर्श करने की क्षमता है, आत्मा का आवाहन करने की शक्ति है और मनुष्य के मन में स्थित आध्यात्मिक केन्द्र को जगाने की खूबी है।

धृपद का प्राचीन स्वरूप आधुनिक धृपद शैली से भिन्न था। 'नृत्य के साथ गाये जानेवाले एक गीत प्रकार को भी धृपद कहा जाता था।' धृपद के गाने के समय उसी प्रकार नर्तन किया जाता था, जिस प्रकार दुमरी गाते समय अच्छन महाराज जैसे गुणी दुमरी के भावों का अभिनय करते थे। अबुल फजल ने 'दफजन' कही जानेवाली नारियों के विषय में कहा है –

"Dufzan are chiefly punjabee women, who play on the Duffs and Dhol and sing Dhrupad, and the Sohela, or Nuptial and birthday songs. Formerly they appeared only before women, but now they will exhibit in public."²

भावभट्ट ने अनूप-संगीत-रत्नाकर में लिखा है – (अठरावी शती)

गीर्वाण मध्य देशीय भाषा साहित्यराजितम्।
द्विचतुर्वाक्यसंपन्नं नरनारी कथाश्रयम् ।।165।।
शृंगाररसभावाद्यं रागालाप पदात्मकम्।
पादांतानुप्रयाससुतं पादांतयुगकंच वा ।।166।।
प्रतिपाद्यं यत्र बद्धमेवं पादचतुष्टयम्।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगांतरं धृपदं स्मृतम् ।।167।।

'नाट्यशास्त्र' में निरूपित 'गान्धर्व' और 'गान' के तत्त्वों को लेकर प्राचीन शास्त्रीय प्रबन्ध परम्परा विकसित हुई। आचार्य शारंगदेव ने 'ध्रुव' नामक प्रबंध का वर्णन किया है। पद का अर्थ प्रबन्ध में प्रयुक्त भाषा-भाग है ध्रुव नामक प्रबंध में प्रयुक्त 'पद' अर्थात् सार्थक शब्द ही धृपद है, एला इ. प्रबंधों में ध्रुव नामक धातु में प्रयुक्त पद को धृपद कहा जा सकता है। धृपद – अर्थात् स्वर, लय, ताल के व्याकरण एवं गाम्भीर्य सहित विशुद्ध गायकी। जो प्रभावपूर्ण परंतु भावपूर्ण है।³

धृपद पूर्ववर्ती 'प्रबंध' नामक विद्या का रूपांतर है। धृपद गान कबसे प्रारंभ हुआ, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, परंतु ग्वालियर के राजा मान (16 वीं शताब्दी) के दरबार में हुआ और उनके उदार आश्रय के फलस्वरूप उसके विकास के लिये विपुल अवसर प्राप्त

Please cite this Article as : अर्चना माधव अंबोरे , धृपद – शाश्वत गायन शैली : Golden Research Thoughts (July; 2012)



हुआ।¹ फकिरुल्ला के अनुसार, 'मानसिंह का संगीतशास्त्र विषयक ज्ञान तथा कीर्ति अनुपम है। कहते हैं कि सबसे पहले धृपद का अविष्कार राजा मानसिंह ने किया था। उसके समय में अनुपम गायक थे। राजा स्वयं उनसे संगीत विद्या के विषय में वादविवाद करता था।² अधिकतर प्रसिद्ध इतिहासकारों ने एवं सांगीतिक विद्वानों ने राजा मानसिंह तोमर को ही धृपद शैली का अविष्कारक माना है। कॅप्टन विलर्ड ने राजा मानसिंह को धृपद शैली का प्रवर्तक मानते हुये अपने ग्रंथ में लिखा है—

'Dhrupad composition has its origin from the time of Raja Mansingh of Gwalior, who is considered as the Father of Dhrupad Singers'³

सहस्रस की फारसी भूमिका के हिन्दी अनुवादानुसार —

'पूर्ववर्ती काल में गति छन्द ध्रुव और स्तुतिका का प्रचार था। राजा मान अपनी बुद्धि की प्रखरता और पहुँच और संगीत कला के लगाव के कारण धृपद लिखने में प्रवृत्त हुआ जो समझने में अधिक सुलभ है और छन्द और ध्रुव का गान बहुत कम हो गया।'⁴

श्री एच.ए. पोपले के अनुसार —

"Raja Man Singh of Gwalior was also a great patron of Music and is said to have introduced the Dhrupad style of singing."⁵

आचार्य बृहस्पती के अनुसार, 'राजा मानसिंह ही धृपद के प्रवर्तक थे।'⁶

राजा नबाब अलि, 'मारिफुन्नगमात' में कहते हैं —

'राजा मानसिंह तंवर ही धृपद शैली का अविष्कारक है, ग्वालियर का शासक राजा मान तंवर संगीत कला का श्रेष्ठ विद्वान था। (राज्यकाल 1486 से 1516) धृपद इसी का अविष्कारक है।⁷ पूर्वोक्त तथ्यों के आधार पर यह निश्चित ही सिद्ध हो जाता है कि वर्तमान धृपद शैली के अविष्कारक ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ही थे।

परन्तु राजा मान को गायन की वर्तमान नई शैली की निर्मिती करने की आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई? इस प्रश्न पर गौर करने पर यह तथ्य सामने आता है, की धृवागीतों की परम्परा का क्रियात्मक रूप भरत के पूर्व से लेकर परवर्ती संस्कृत नाटक ग्रंथों में बराबर पाया जाता है। पुराने समय में संगीत देवालयों में पूजा-अर्चा की भाषा संस्कृत थी। जनसाधारण को संस्कृत का आकलन नहीं हो सकता था। फलतः प्रबंध की रचना धीरे-धीरे प्रादेशिक भाषा में होने लगी। धृवा गीतों की परम्परा का संपूर्ण शास्त्रोक्त वर्णन भरत नाट्यशास्त्र के अध्याय 32 में दिया गया है।

*ध्रुवेति संज्ञितानि स्युर्नारदप्रमुखैर्द्विजै ।
यान्यङ्गानीह उक्तानि तानि मे सन्निबोधत ॥१॥'*

भरत कृत नाट्यशास्त्र के 32 अध्याय के अनुसार धृवा गीतों का नाट्य के अन्तर्गत एक विशिष्ट स्थान होता है। धृवागीतों का उद्देश्य नाट्य के अंतर्गत सफल भावामिव्यक्ति करना था। छन्द, वृत्त तथा पद की विशिष्ट रचना को धृवा गीत कहते थे। धृवा गीतों में प्रथम आलाप गान पश्चात् वाद्य तथा उनके अनन्तर छन्दगान यही क्रम अभीष्ट माना गया था। धृवागायन के साथ मृदंग अथवा पुष्कर जैसे वाद्य से संगत की जाती थी।

किसी अविष्कार के लिये प्राचीन मौलिक आधारों का होना नितान्त आवश्यक है उसी प्रकार अविष्कार के लिये किसी वस्तु से प्रेरणा मिलना भी उतना ही जरूरी है। उसी प्रकार राजा मानसिंह ने नाट्यशास्त्र का अध्ययन किया होगा। इसिलीए फकिरुल्ला ने अपनी पुस्तक 'रागदर्पण' में राजा मान द्वारा रचित ग्रंथ 'मानकुतूहल' को भरत मत पर आधारित बताया है।⁸ नाट्यशास्त्र में वर्णित धृवागायन से प्रेरणा प्राप्त कर उसके समकालीन परिस्थितियों में इसके सदृश्य कोई नई शैली का प्रारम्भ करने का ध्येय बनाकर अपनी नई शैली का मूलाधार 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित धृवागायन को रखा। धृवागायनसे प्रेरित होकर, नई शैली के अविष्कार हेतु सर्वप्रथम ग्वालियर भाषा में कविताएँ लिखी एवं उन्हे शास्त्रीय संगीत के ढाँचे में सर्वप्रथम राजा मानने ही ढाला। उन पद रचनाओं को चार विभाग में वर्गीकृत किया, उसे स्वतंत्र रूप से गाने योग्य बनाया और विद्वज्जनोंसे गहन चर्चा कर नवीन विधि द्वारा धृपद शैली के रूप में लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया।⁹

धृपद गायन शैली

धृपद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें अनिबद्ध अर्थात् मुक्त और निबद्ध अर्थात् बँधी हुई गायन प्रणाली का सर्वोत्तम रीति से समन्वय साध लिया गया है। अनिबद्ध के अंतर्गत शुरु में विलंबित, मध्य और द्रुत स्वरालाप का प्रयोग होता है। निबद्ध के अंतर्गत बंदिश गायन होता है, जिसमें बंदिश तथा राग के भाव का उद्घाटन और लयकारी को स्थान दिया जाता है। इसमें कविता और राग के भाव को सुरक्षित रखने पर बल दिया जाता है।

अनिबद्ध को स्वतंत्र स्थान तो धृपद में दिया गया ही है और निबद्ध के साथ जोड़कर भी उसका विस्तार स्थूल लय के आधार पर होता है। फिर जोड़ को द्रुत लय पर ले जाकर अनिबद्ध के इस विस्तार को पूर्ण किया जाता है। इस पूर्णता का उत्कर्ष बिंदु द्रुत लय में "रिदन-तदन" आदि के सहारे स्वराकृतियों का प्रदर्शन होता है इस उत्कर्ष बिंदु के बाद पहले भाग का विसर्जन होता है और पखावज की संगत पर बंदिश का आरंभ हो जाता है। इस आलाप-जोड़-द्रुत में 'नोमतोम्' जैसे अक्षरों का उच्चारण बराबर किया जाता है। अर्थहीन अक्षर प्रतीत होते हैं परंतु 'ओम् अनंतहरि नारायण' या तरनतारण नारायण सार्थक पदों का बिगडा हुआ रूप है। इसीसे एक बात साबित होती है जब केवल राग के ही स्वरूप को उभारने का उद्देश्य हो, तब निरर्थक, अर्थहीन अक्षर बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं।

बंदिश

आलाप के विलंबित, मध्य और द्रुत अंग के बाद जब बंदिश का आरंभ होता है तब धृपद की प्रस्तुति में कविता का प्रवेश होता है। यहाँ के सार्थक पद और ताल-ध्रुल मिलकर चलते हैं। इस संपूर्ण बंदिश के चार अंग होते हैं—स्थायी, अंतरा, आभोग और संचारी। स्थायी में मंद्र और मध्य सप्तक को प्रधानता दी जाती है तो अंतरे में तार सप्तक को। आभोग, स्थायी और अंतरे में से किसी एक को रेखांकित न करते हुये दोनों को समतल भूमि पर लाकर समन्वय करने की अवस्था है। संचारी अंग में कवि और गायक का नाम आता है। धृपद के विकास से साथ ही संभवतः ख्याल के प्रभाव के कारण आजकल धृपद-प्रस्तुतियों में और संचारी का चलन कुछ कम हो रहा है। बंदिश की प्रस्तुति में बोलों का स्वर-लय के साथ नाना प्रकारोंसे सजाने पर बल दिया जाता है इसे बोल-बॉट या उपज कहा जाता है। इसमें ताल का प्रवेश जो जाता है और बंदिश के बोलों की सजावट के साथ पखावज के बोलों की हाथ में हाथ मिलाकर बढत शुरु होती है। इसी में लयकारी का प्रदर्शन आरंभ होता है, जिसकी परिणति तालवाद्य और गायन बीच होनेवाली सौंदर्यात्मक स्पर्धा में हो जाती है।



साथसंगत

धृपद के स्वर पक्ष का वाद्य है। वीन या रुद्रवीणा और तालपक्ष का वाद्य पखावज है। आजकल धृपद की महफिलों से वीन लगभग हट गयी है।

धृपद की भाषा

धृपद की भाषा ओजोगुणयुक्त है और उस युग की है। गोपाल नायक द्वारा रचित निम्नलिखित धृपद में भीमपलासी राग के धृपद की रचना उदाहरण के तौर पर रखिये – राग-भीमपलासी, 'उसूले फाख्ता' (सूल) ताल में निबध्द।

‘धकदलन रे प्रबल्ल नाद
सिंघनाद बल अपबल वक्रअर
कुडानधीर अडान मिलवत
चपल चाप अचपल अक्रअर।
गीत गावत नाइक गोपाल विद्यावर।
साहिनिसाहि अल्लावदीं तपै डिली नरेस
जाके वसुधा सुचित तू अतकधर।’¹⁵

इस धृपद में राग भीमपलासी, जो उत्तर हिंदुस्थानी संगीत-पध्दति का राग है। 'उसूले फाख्ता' नामक ताल में निबध्द है। 'उसूले फाख्ता' शब्द बिगडकर 'सूलफाख्तः।' हो गया, मुहम्मद करमइमाम ने अमीरखुसरोद्वारा अविष्कृत सत्रह तालों में इस ताल की भी गणना की है।¹⁶ उपरोक्त धृपद में अल्लाउद्दीन के प्रताप का वर्णन है।

'अल्लावदीं' शब्द 'अल्लाउद्दीन' का भारतीय अपभ्रंश है। आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण के रचयिता ने 'अलावदीन नृपतौ न सन्धिर्नच विग्रह।' में 'अल्लाउद्दीन' का भारतीय अपभ्रंश 'अलावदीन' में दिया है।

नायक बैजू ने राजा मानसिंह द्वारा अविष्कृत धृपद शैली को चिरस्थायी बनाने हेतु, इसकी मौलिकता सिध्द करने हेतु बहुसंख्य पदों की रचना की। बैजू द्वारा रचित अधिक तर पद संगीत के महान ग्रंथ 'राग कल्पद्रुम' में पाये गये हैं। बैजू की रचनाएँ भाषा में हैं किन्तु संस्कृत के तत्सम शब्द भी प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुये हैं कहीं तो सम्पूर्ण पद ही एक दो शब्दों को छोड़कर संस्कृत की रचना प्रतीत होती है। देखिये –

हरिहर, बंसीधर पिनाकरधर, गिरवरधर गंगाधर,
चन्द्रमा लीलाधर हो हरिहर।
सुधाधर विषधर, धरनीधर शोषधर,
चक्रधर त्रिसूल धर नरहरि शिवषंकर
रमाधर, उमाधर, मुकुटधर, जटाधर,
भस्मधर कुंकुमधर पीतांबरधर व्याघ्रांबरधर।
नंदीधर गरुडधर कैलासधर, वैकुण्ठधर,
कहे 'बैजू बावरे' सुनो ही गुनीजन,
निसदिन हरिहर ध्यान उर धर रे ॥¹⁷

अनेक पदों में संस्कृत के तत्सम शब्द मिलते हैं। उदा. अदभूत, गति, छत्रपति, ललित, केलि, त्रिभंगी, संगीत, सूर्य आदि.

संस्कृत के तदभव शब्द

जसोदा सुरति, कान्ह, जीवन, पिय, माँह, इनी, सिंगार, आलस, दूध आदि.

अरबी भाषा के तत्सम / तदभव शब्द

जहाज, दरबार, फौज, हुनर, अमीर, जंग इ.

मार्गी भारत में तब तक प्रचलित रहा जब तक कि धृपद का जन्म नहीं हुआ था। राजा मानसिंह ने इसे पहली बार गाया था। इसमें चार पंक्तियाँ होती हैं और सभी रसों में बाँधा जाता है। धृपद देशी भाषा में देशवारी गीत था तथा मार्गी में संस्कृत थी, इसीलिये मार्गी पीछे हट गया और धृपद आगे बढ़ गया।

ग्वालियर की धृपद शैली में तत्कालिन पद साहित्य के विषय में हमें पं. भावभट्टने जानकारी दी है। धृपद संस्कृत न हो कर मध्यदेशीय भाषा एवं साहित्य में राजितम थे।²⁰

मानकुतूहल ग्रंथानुसार

धृपद देशी भाषा में होते हैं। इसमें चार पंक्तियाँ होती हैं एवं सारे रसों में बाँधा जाता है। इस गीत शैली के आविष्कारक राजा मानसिंह बताकर उनकी बहुत प्रशंसा भी की गई है।¹⁸ तानसेन ने निम्नलिखित धृपद में गायन की सुप्रसिध्द चार बानियों का उल्लेख किया है।

बानी चारों के ब्योहार, सुति लीजै हो गुनीजन,
तब पावै यह विद्या-सार।।
राजा गुबरहार, फौजदार खंडार, दीवान डागुर, बक्सी नौहार।



अचल सुर पंचम, चल सुर रिषभ
मध्यम धैवत, निषाद गंधार।।
सप्त तीन, इकईस मूर्छना, बाईस सुरति,
उनचास कूटतान तानसेन आधार।।^१

तानसेन के धृपदों में प्रयुक्त ताल

कविवर तानसेन द्वारा रचित धृपदों में प्रयुक्त ताल हुये, वे हैं।

1) चौताल 2) त्रिताल 3) धमार 4) झपताल 5) सुरफाक्ता 6) आडाचौताल 7) रुपक 8) गणेशताल 9) चर्चरी 10) धीमा त्रिताला
चौताल ताल का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। जिसमें वर्तमान में उपलब्ध तानसेन के करीब 150 से उपर धृपद तालबद्ध किये गये
है सबसे कम उपयोग गणेशताल एवं आडा चौताल का हुआ है। तानसेन के धृपदों में, वर्तमान में उपलब्ध, 36 रागिनियों का प्रयोग किया गया है।
नायक बक्शू के धृपदों में प्रयुक्त ताल

सहसरस में वर्णित नायक बक्शू के धृपदों में निम्नलिखित 10 ताल प्रयुक्त हुये हैं –

1) एकताली 2) आदिताल महशुर व अठताल 3) समताल 4) झुमरताल 5) कमल मश्ट मशहूर व फारखाई 6) जतलगन 7) चतुर्थताल 8) झपताल
9) तृतीय ताल 10) परत ताल²³
सहसरस में चार राग और छियालीस रागिनीओं का प्रयोग किया गया है।

उपसंहार –

धृपद की इतिहास की ओर नजर डालने पर ज्ञात होता है कि उसका आरंभ ग्वालियर के राजा मान (16 वीं शताब्दी) के दरबार में हुआ और उसके
उदार आश्रय के फलस्वरूप उसके विकास के लिये विपुल अवसर प्राप्त हुआ। धृपद दरबार के समान मंदिरों में भी गाया जाता था। राजा मानसिंह
के समान ही मंदिरों में भी गाया जाता था। राजा मानसिंह के समानांतर अन्य महाराजाओं और खास कर मुगल बादशाहों के दरबार में विशेष
रूप में धृपद को आश्रय प्राप्त हो गया। इस प्रकार बिलकुल आरंभिक जमाने से लेकर धृपद को मंदिरों और राजाओं तथा बादशहों के दरबारमें
आश्रय मिलता गया। मंदिरों में होनेवाले धृपद गायन का प्रमाण हमें वल्लभ संप्रदाय के अष्टछाप कृष्णभक्त संत कवियों के कार्य में मिलता है। इस
संप्रदाय के कवि मथुरा-वृंदावन तथा सौराष्ट्र में अपना भक्तिगायन किया करते थे। इसी के साथ सम्राट अकबर के शासन काल में धृपद का
पैमाना और अधिक बुलंद हुआ।

कला पक्ष और रंजन पक्ष, दोनों की विद्यमानता में भी धृपद-प्रचार कम होते गया। धृपद शैली उच्छृंखल और विलासी प्रवृत्ति की
अवरोधक है। विदेशियों के आक्रमण के पश्चात कई कारणों से हिन्दु कलाकार, जिन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान था या तो वे छुप गये या बरबस
उन्होंने धर्मपरिवर्तन कर लिया। विदेशियों के संपर्क में आने के पश्चात अपना धर्म, संस्कृति धीरे धीरे संबन्ध विच्छेद हो गया, जिससे भावी पीढ़ी
परम्परागत शिक्षा से वंचित हो गयी। फलतः धृपद का प्रचार धीरे धीरे कम हो गया। परन्तु 'धृपद' भारतीय संगीत की परम्परा, इतिहास, ज्ञान
आदि का सुदृढ़ स्तम्भ है, इसलिए धृपद का प्रचार व उसके सिद्धांतों की शिक्षा-भारतीय संगीत की ही रक्षा है।

निष्कर्ष

1. धृपद पूर्ववर्ती प्रबंध नामक विद्या का रूपांतर है।
2. राजा मान के दरबार में धृपद गायन का प्रारंभ हुआ, उनके उदार आश्रय के फलस्वरूप उसके विकास के लिये विपुल अवसर प्राप्त हुआ।
3. वर्तमान में धृपद गायन में चौताल का अधिकतर प्रयोग किया जाता है और तानसेन ने भी अपने सर्वाधिक पद इसी ताल में लिपिबद्ध किये हुए
हैं।
4. तानसेन द्वारा रचित उपलब्ध तीन पद ताल धमार में तालबद्ध किये गये हैं जिससे यह स्पष्टतया प्रमाणित होता है कि तानसेन धमार के लिये
भी पदरचना करते थे एवं उसे गाते भी थे।

फूटनोट –

1. रातांजनकर, श्री. ना. धृपद की गायकी, संगीत अक्टूबर 1971, पृ. 5
2. फ्रांसिस ग्लेडविन 'आईने-अकबरी' का अनुवाद पृ. 734.
3. काव्या, लावण्यकीर्ति सिंह, (2009), संगीत-सुधा, पृ. 80.
4. पं. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, प्रबन्धाध्याय, श्लोक 314
5. देशपांडे, वामनराव., (1994) मुक्त-संगीत संवाद, पृ. 24
6. द्विवेदी हरिहरनिवास (अनुवादक), मानसिंह और मानकुतूहल, पृ. 58
7. बांगरे, अरुण (1993), ग्वालियर की संगीत परंपरा, पृ. 40
8. शर्मा, प्रेमलता (सम्पादक), सहसरस (भूमिका) पृ. 11
9. पोपले, एच.ए. दि. म्यूजिक ऑफ इन्डिया, पृ. 17 और 91
10. बृहस्पति, आचार्य., (1989), संगीत चिंतामणि प्रथम खंड पृ. 85 संगीत प्रकाशन, हाथरस.
11. मध्यप्रदेश गजेटियर, पृ. 379
12. शास्त्री बाबुलाल., (द्वि.सं.2006), 'भरतमुनी का नाट्यशास्त्र', द्वित्रिशोध्याय, श्लोक 1, पृ. 216
13. त्रिवेदी हरिहरनिवास., मानसिंह और मानकुतूहल, पृ. 57
14. बांगरे अरुण., (1993) ग्वालियर की संगीत परंपरा, पृ. 47.
15. रागमाला, 86 अ, संगीत (1993), ग्वालियर की संगीत परंपरा, पृ. 47
16. रागमाला, 86 अ., संगीत (1964 – जन) पृ. 14
17. मअदन्-उल-मूसिकी पृ. 194, संगीत (1964-जनवरी) पृ. 15
18. विश्वनाथ, आचार्य 'साहित्य-दर्पण परिच्छेद4', संगीत (जन 1964) पृ. 15



19. मित्तल प्रभुदयाल, बैजू और गोपाल, पृ. 45
20. बांगरे, अरुण (1993) ग्वालियर की संगीत परंपरा पृ. 47
21. त्रिवेदी हरिहरनिवास, मानसिंह और मानकुतूहल, पृ. 91
22. मित्तल प्रभुदयाल, संगीत सम्राट तानसेन, पृ. 64
23. शर्मा प्रेमलता, सहसरस (संपादन) पृ. 120-121

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. काव्या, लावण्यकीर्ति सिंह (2009), संगीत सुधा, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली – 110002
2. चौधरी सुमद्रा (2000), शारंगदेवकृत संगीत रत्नाकर, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.
3. देशपाण्डे, वामनराव ह., (1973), घरानेदार गायकी, नई दिल्ली, ओरिएण्ट लॉन्गमैन लिमिटेड
4. बांगरे, अरुण., (1995), ग्वालियर की संगीत परंपरा, यशोयश प्रकाशन, हुबली, कर्नाटक, 580025
5. भातखंडे, वि.ना. (1991) क्र. पु. मालिका भाग 4, संगीत कार्यालय हाथरस.
6. मध्यप्रदेश गजेटियर, द्वितीय संस्करण, 2006
7. मित्तल प्रभुदयाल., ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, मथुरा प्रकाशक अग्रवाल प्रेस, 1970
8. 'संगीत' मासिक जनवरी 1964, 'संगीत' कार्यालय, हाथरस
9. संगोराम, श्रीरंग (1994), 'मुक्त संगीत – संवाद', गानवर्धन संस्था, पुणे.

